International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 4; July 2018; Page No. 134-137

19 एवं 20वीं शताब्दी में महिलाओं की निम्न स्थिति का एक अध्ययन

डॉ० संजय कुमार मिश्रा [1]

[1] सहायक प्राध्यापक इतिहास, एस.आर.पी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हनुमना, जिला रीवा (म.प्र.), भारत।

सारांश

19वीं शताब्दी की अत्याचार विरोधी अभियान और इसके नेता राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के खिलाफ जो कठोर जेहाद छेड़ा, उसके परिणाम–स्वरूप अन्ततः 1829 में सती प्रथा का पालन करने पर कानूनी प्रतिबन्ध लगा दिया गया। राजा राममोहन राय बहुविवाह के विरोधी थे और उन्होंने महिलाओं को जायदाद में हक देने पर भी जोर दिया। इसके अलावा अन्य सुधारकों– डी.एन.टैगोर, ईश्वर चन्द विद्यासागर, स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि ने महिला उत्थान के लिए कठिन प्रयत्न किए। इन समाज सुधारकों ने महिला शिक्षा पर विशेष बल दिया। इसके अलावा विधवा पुनर्विवाह पर बल देने और बाल विवाहों को रोकने के लिए इन्होंने जन आंदोलनों और जन चेतना का सहारा लिया। इन सुधारकों द्वारा किए गए लगातार प्रयत्नों के परिणामस्वरूप सरकार ने कड़े विरोध के बावजूद 1856 में विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पारित किया। बाल विवाह के खिलाफ के.सी. सेन के प्रयत्नों से 1872 में सिविल मैरिज एक्ट बनाया गया। लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा के लिए कई अलग संस्थान भी खोले गए।

ऐसे ही समय में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में महिलाओं के पक्ष में राष्ट्रीय आंदोलन उठ खड़ा हुआ। महात्मा गाँधी ने सारे देश की महिलाओं को घर की चारदीवारी से उठकर बाहर आने के लिए पुकारा। उन्होंने प्रभात फेरियों और सत्यागृहों में हजार महिलाओं को एक साथ जोड़ा ताकि वे विचारों और भावनाओं का आदान–प्रदान कर सकें और आंदोलनों को एक ठोस जामा पहना सकें। वे महिलाओं और पुरुषों की समान भूमिका के पक्षधर थे। 1918 में यंग इंडिया में उन्होंने लिखा कि स्त्री, पुरुष की सहचरी है, जिसे पुरुष के समान ही व्यावसायिक क्षमता प्राप्त है। उसे पुरुषों की छोटी से छोटी गतिविधियों में भी हिस्सा लेने का हक है और उसे उतनी ही आजादी का अधिकार है, जितना पुरुष को है। सिर्फ एक मनगढ़त रिवाज के बल पर ही अज्ञानी और गुणविहीन पुरुष, महिलाओं से ऊँचा स्थान पा जाते हैं, जिसके कि वे हकदार नहीं होते।

20वीं शताब्दी की शुरूआत में गाँधी जी ने देश की आजादी की लड़ाई के साथ ही महिलाओं की आजादी और समानता की लड़ाई को भी जोड़ दिया, क्योंकि देश की इस आधी आबादी के मैदान में आए बिना राजनैतिक आजादी मिलना मुश्किल था। इस समय देश को जो प्रबल महिला नेता मिली उनमें सरोजिनी नायडू, राजकुमारी अमृत कौर, कमला देवी चट्टोपाध्याय, दुर्गाबाई देशमुख, धनवन्ति रामाराव आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी समय महिलाओं की संस्थाएँ भी शुरु हुई, जिनमें अखिल भारतीय महिला परिषद (1926), वीमन्स कौंसिल (1920) तथा राज्य स्तरीय संगठन जैसे गुजरात में ज्योति संघ (1934) और महाराष्ट्र में हिन्दू वीमन्स रेस्क्यू सोसाइटी (1927) व रतन टाटा इंडस्ट्रियूट (1938) प्रमुख है। (1917) से (1947) के बीच देश में कई महिला संगठनों का एक साथ उदय हुआ। इन सभी संगठनों की गतिविधियों भी विस्तृत थी। इससे महिला नेतृत्व में और अधिक निखार आ गया था। महिला उत्थान की गतिविधियों को भावनात्मक और सतर्कता से उठाया जाने लगा था। आजादी के राजनैतिक आंदोलन में महिलाओं के जुड़ जाने महिलाओं को नई ताकत मिली थी। अब वे अपने उत्थान की लड़ाई का नेतृत्व स्वयं करने के काबिल हो गई थीं। इस तरह एक वास्तविक महिला आंदोलन शुरू हुआ। इन महिलाओं ने स्त्री पुरुष समानता को अपने आंदोलन का विषय बनाया क्योंकि असमानमा ही अब तक होने वाले अत्याचारों और हिंसा की जड़ थी। हालांकि, यह आंदोलन शुरू में देश के कोने–कोने तक नहीं पहुंचा और उच्च वर्ग की पढ़ी–लिखी महिलाएँ ही इसमें शामिल थी। दूसरे यह आजादी के राष्ट्रीय आंदोलन के साथ इस तरह घुल–मिल गया था कि इसे अलग से देख पाना मुश्किल था। बीसवीं शताब्दी की तीसरा दशक आते–आते तो देश में आजादी की लहर इतनी तीव्र हो गई थी कि किसी भी आंदोलन को अलग से उठा पाना न तो संभव था और न उचित ही था।

मूल शब्द : 19एवं 20वीं शताब्दी, महिलाएँ, निम्न स्थिति, अध्ययन।

प्रस्तावना

19वीं एवं 20वीं सदी के प्रारम्भ में भारत में हुए धर्म सुधारकों ने भारतीय समाज के उत्थान के लिये भारतीय नारी के उत्थान को आवश्यक बता दिया था। निश्चित रूप से इससे भारतीय नारी समाज में कही न कही जागरण की भावना आयी वरन् भारतीय नारी समाज अपने अधिकारों के प्रति सजग भी होने लगा था। 19वी सदी में समूचे भारत में आर्थिक, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में व्यापक स्तर पर परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा था। इतिहासकारों ने इसको भारतीय पुर्नजागरण नाम दिया जिसने जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में रूढ़िवादी परम्पराओं का जोरदार खण्डन किया और निष्क्रिय रूढ़ीवादी परम्पराओं की स्पष्ट तौर पर चुनौती दी गई। भारत की सांस्कृतिक पुर्नजागरण को मध्ययुग की समाप्ति और आधुनिक युग के आगमन के रूप में देखा गया और समाज के हर क्षेत्र में एक नयी ताजी हवा के झोंके की तरह नये विचारों ने दस्तक दी और ऐसे ही माहौल मे स्त्रियों की दयनीय स्थिति की तरह भी ध्यान गया और यह स्पष्ट रूप से माना गया कि यदि महिलाओं की दशा नही सुधरती है तो, न तो भारत की दशा किसी तरह सुधरेगी न उसका किसी तरह का कल्याण होगा, इसलिये पुर्नजागरण के अग्रणी नेता राजा राम मोहन राय ने इस प्रचलित विचार का विरोध किया कि स्त्रियों में पुरूषों से बुद्धि कम होती है

या स्त्रियों पुरूषों से नैतिक दृष्टि से किसी भी मामले में निक्रिय है। देवेन्द्रनाथ ठाकुर और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे महान व्यक्तित्व भी उभरकर समाने आये। [1]

वर्ष 1850 ई. में विष्णुशास्त्री पंडित ने विधवा विवाह समाज स्थापित किया और उसके एक वर्ष बाद ही अर्थात 1851 में ज्योतिबा फूले और उनकी पत्नी ने पूना मे लड़कियों के लिये स्कूल खोला। इन चीजों ने उस जरूरी माहौल को बनाने का कार्य किया जिसमें स्त्री शिक्षा, स्त्री प्रगति, की न केवल बात की जा सकती थी वरन् उनके लिये आवष्यक रूप से वास्तविक धरातल पर भी कुछ किया जा सकता था। भारत के पितामह कहे जाने वाले दादा भाई नौरोजी जिनका समाज पर अच्छा प्रभाव था उन्होंने भी नारी जागरण के लिये अनुकुल माहौल बनाने का कार्य किया। स्वामी दयानंद सरस्वती और उनकी संस्था आर्य समाज ने पुरजोर तरीके से महिलाओं को हर क्षेत्र में न केवल भागीदारीता देने की बात की वरन् दयानंद सरस्वती ने धार्मिक दृष्टि से महिलाओं की निम्न स्थिति को अस्वीकार करते हुए उन्हें यज्ञ करने यज्ञोपवीत और गायत्री मंत्र जैसे मंत्रों को भी साधीकार पढ़ने का अधिकार देकर धार्मिक क्षेत्र में स्त्रियां और पुरूषों में अन्तर को समाप्त किया। [2]

महिला आन्दोलन भारत में अपने सही रूप में 1920 के दशक में उभार पर आया। 19वीं शताब्दी में सामाजिक सुधार के लिये जो आन्दोलन चला कही न कही उसी के आधार पर या उसी के अंश से भारत में महिलाओं का आन्दोलन भी निकला। महिला आन्दोलन की प्रगति उस दौरान हुई जब समुचे भारत का रूख एक उच्च स्तरीय राष्ट्रीयता का जन्म दे रहा था। जो स्वतंत्रता आन्दोलन को बहुत सारे आयाम दे रहा था। ऐसे ही समय में महिला आन्दोलन ने भी अपने तमाम रंग बिखेरने शुरू किये। जो कि इस बात को सबसे ज्यादा महत्व प्रदान करती है वह यह कि भारत में बड़े ही शुरूआती समय में महिलाओ ने अपने लिये संवैधानिक प्रत्याभूत और अधिकारो की मांग की। उन्होंने महिलओं के लिये पुरूषों के समान अधिकार की मांग रखी। इन सबके बावजूद महिला आन्दोलन ने स्वतंत्रता आन्दोलन से अलग अपनी कोई बड़ी छवि नही निर्मित की। महिलाओं की लड़ाई ज्यादातर संवैधानिक ही बनी रही। वह सड़कों पे उतरकर मूलभूत मुद्दो की लड़ाई नही बन सकी। दुर्भाग्य से उन दोनो बातों को आज तक प्रश्न चिन्ह के रूप में बनाये रखा गया और अभी भी इन बड़े प्रश्नों के समाधान की राह खोजी जा रही है।

भारत में समान नागरिक संहिता जिसको बिना किसी विवाद के भारत की स्वतंत्रता के साथ ही लागू कर दिया जाना चाहिए था। वह समान नागरिक संहिता भी इतने अधिक विवादों में घिर गई कि वह कभी मूर्त रूप ले पायेगी, यह प्रश्न आज अपने जवाब कि तलाश कर रहा है। दूसरा स्वतंत्रता पूर्व से ही हमारी राजनीतिक आकाओं ने महिलाओं को इस बात के दिवा स्वप्न दिखाये थे कि संवैधानिक संस्थाओं में उचित रूप महिलाओं को स्थान दिया जायेगा ताकि वे अपनी बात आासानी से रख सके और इस भारत को सही मायने में भारत बनाया जा सका भारतीय संवैधानिक संस्थाओं में उचित आरक्षण ओर समान नागरिक संहिता दोनो आजादी के 66 साल बाद भी दूर की कोड़ी लगते है। महिला आन्दोलन ने ब्रिटिशकाल में या उसके बाद क्या हासिल किया इस बात को समझने के लिये कही–न–कही इसकी लम्बी ऐतिहासिक जड़ो को समझना पड़ेगा। कलकत्ता विश्वविद्यालय की सुमित सेन (समिता सेन) लिखती है कि within the womens movement cleavager that reflact divisions of cast, class and community among women to understand the implication.[3]

20वीं शताब्दी की शुरूआत में गाँधी जी ने देश की आजादी की लड़ाई के साथ ही महिलाओं की आजादी और समानता की लड़ाई को भी जोड़ दिया, क्योंकि देश की इस आधी आबादी के मैदान में आए बिना राजनैतिक आजादी मिलना मुश्किल था। इस समय देश को जो प्रबल महिला नेता मिली उनमें सरोजिनी नायडू, राजकुमारी अमृत कौर कमला देवी चट्टोपाध्याय, दुर्गाबाई देशमुख, धनवन्ति रामाराव आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इसी समय महिलाओं की संस्थाएँ भी शुरु हुई, जिनमें अखिल भारतीय महिला परिषद (1926), वीमन्स कौंसिल (1920) तथा राज्य स्तरीय संगठन जैसे गुजरात में ज्योति संघ (1934) और महाराष्ट्र में हिन्दू वीमन्स रेस्क्यू सोसाइटी (1927) व रतन टाटा इंडस्ट्रियूट (1938) प्रमुख है। (1917 से 1947) के बीच देश में कई महिला संगठनों का एक साथ उदय हुआ। इन सभी संगठनों की गतिविधियों भी विस्तृत थी। इससे महिला नेतृत्व में और अधिक निखार आ गया था। महिला उत्थान की गतिविधियों को भावनात्मक और सतर्कता से उठाया जाने लगा था। आजादी के राजनैतिक आंदोलन में महिलाओं के जुड़ जाने से महिलाओं को नई ताकत मिली थी। अब वे अपने उत्थान की लड़ाई का नेतृत्व स्वयं करने के काबिल हो गई थीं। इस तरह एक वास्तविक महिला आंदोलन शुरू हुआ। इन महिलाओं ने स्त्री पुरुष समानता को अपने आंदोलन का विषय बनाया क्योंकि असमानमा ही अब तक होने वाले अत्याचारों और हिंसा की जड़ थी। हालांकि, यह आंदोलन शुरू में देश के कोने–कोने तक नहीं पहुंचा और उच्च वर्ग की पढ़ी–लिखा महिलाएँ ही इसमें शामिल थी। दूसरे यह आजादी के राष्ट्रीय आंदोलन के साथ इस तरह घुल–मिल गया था कि इसे अलग से देख पाना मुश्किल था। बीसवीं शताब्दी की तीसरा दशक आते–आते तो देश में आजादी की लहर इतनी तीव्र हो गई थी कि किसी भी आंदोलन को अलग से उठा पाना न तो संभव था और न उचित ही था। [4]

महिलाओं ने किसान, आदिवासी, ट्रेड यूनियन और पर्यावरण–संबंधी आंदोलनों में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। साथ ही, इनके अंदर भी महिलाओं के सवाल उठाये गये हैं। 1946–47 में बंगाल के किसान आंदोलन के दौरान महिलाओं ने 'नारी–वाहिनी' संगठित की और उन्होंने छिपने के स्थान तथा संचार व्यवस्था दुरूस्त की। कम्युनिष्ठ महिला कार्यकर्ताओं ने ग्रामीण महिलाओं को खास तौर पर महिलायें के सवालों पर संगठित किया, जैसे–वित्त और संपत्ति के अधिकार। ग्राम स्तरीय महिला आत्मरक्षा समितियाँ संगठित की गई जिन्होंने घरेलू हिंसा और पत्नियों की पिटाई जैसे सवालों को उठाया। इस वक्त का एक और महत्वपूर्ण किसान आंदोलन हैदराबाद के तेलंगाना क्षेत्र में चलने वाला तेलंगाना आंदोलन था, जो 1946–50 में चला था। इसमें भी महिलाओं की हिस्सेदारी काफी महत्पूर्ण थी और इसके नेतृत्व ने भी पत्नियों की पिटाई–जैसी महिलाओं के संगठनों के उभरने का कोई साक्ष्य नहीं है। [5]

महिला आंदोलन की एक और धारा जो 'स्वायत्त' दलों का आंदोलन कहा गया। इन आंदोलनों का प्रसार सत्तर के दशक के मध्य में शहरी इलाकों में हुआ। इनमें से कई ऐसे आंदोलन थे जो माओवादी या नक्सलपंथी आंदोलनों से प्रभावित थे। सत्तर के दशक के आरम्भ में नक्सलवाद के पतन के फलस्वरूप बहसें छिड़ गई और नये महिला संगठन थे–हैदराबाद में 1974 में उस्मानिया यूनिवर्सिटी का प्रगतिशील महिला संगठन, पुणे में पुरोगामी स्त्री संगठन और 1975 में बंबई का स्त्रीमुक्ति संगठन। 1975 को संयुक्त राष्ट्र ने विश्व महिला वर्ष घोषित किया। इसके फलस्वरूप 1975 में महाराष्ट्र में संगठनों की गतिविधियों में तेजी आई। पार्टियों पर आधारित और स्वतंत्र संगठनों ने पहली बार 8 मार्च को विश्व महिला दिवस के रूप में मनाया। उसी वर्ष पुणे में एक महिला

सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें सारे राज्य भर से माओवादी ग्रुप, समाजवादी और रिपब्लिकन पार्टियाँ मा0क0पा0 और लाल निशान पार्टी शामिल हुई। [6]

भारत के महिला आन्दोलन में ब्रिटिशकाल की विदेशी महिलाओं का योगदान भी सराहनीय रहा हैं। विदेशी महिला श्रीमती डॉना मार्कससेन की ही बात कर ले तो इन्होनें कलकत्ता तथा हैरामपुर में लड़कियों के लिये स्कूलों की स्थापना करके नारी शिक्षा के क्षेत्र में अपना विशिष्ट योगदान दिया और सबसे दिलचस्प बात यह थी। तात्कालीन गवर्नर जर्नल लार्ड डफरिन की पत्नी लेडी डफरिन ने भी डॉना मार्कससेन के प्रयासो का पूर्ण समर्थन किया। [7]

औपनिवेशिक सामाजिक ढ़ाँचे में महिला की भूमिका महिला आन्दोलनो के प्रभाव पष्चिम से, पश्चिमी जगत से अलग रहे है भारत में महिलाओं की भूमिका अलग तरीके से सामने आयी और खासकर जब एक नारीवादी संगठन ने महिलाओं की स्थिति पर एक विस्तृत सर्वे किया। यह रिपोर्ट कहती है कि 18वीं, 19वीं शताब्दी में महिलओं के ऊपर अत्याचार, धृणा और उनका उत्पीड़न बदस्तुर जारी था और इसमें ठहराव या बदलाव की गुनजाइश तभी थी जब महिलाओं के हक में कोई बड़ा आन्दोलन खड़ा किया जाये।

पश्चिमी नारी आन्दोलानों के विपरीत भारत में नारी आन्दोलनो का नेतृत्व पुरूषों ने किया और महिलाओं ने उसमें बहुत बाद में हिस्सा लिया इन पुरूष नारी समाज सुधारको के प्रयासो से नारियां की स्थिति में निश्चित रूप से सुधार आया। जैसे– सतीप्रथा का उन्मूलन किया गया बाल विवाह की प्रवृत्ति पर रोक लगाने की दिशा में सार्थक प्रयास हुए सबसे बड़ी बात राजा राममोहन राय और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे समाज सुधारको के प्रयासो से महिला विधवाओं की स्थिति का उल्लेखनीय सुधार हुआ। भारतीय विधवाओं जिनको उनके पति की मृत्यु के बाद उनका अस्तित्व ही नकार दिया जाता था। निश्चित रूप से ब्रिटिशकालीन नारी जागरण में इस तरह की महिलाओं की स्थिति में सुधार हुए और इनमें सम्मान और अपनी पहचान दोनो प्रदान किये गये विधवा विवाह के समर्थन में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयास सार्थक रहे भले ही जमीनी स्तर पर यह प्रभाव बहुत बड़ा आकार नहीं ले सका। महिला शिक्षा के प्रोत्साहन से महिलओं में एक नव जागृति, नव उत्साह और कुछ नया करने की तमन्ना रंग भरने लगी। नारी शिक्षा का परिणाम यह हुआ कि नारी अपने संवैधानिक अधिकारो के प्रति जागरूक हो गयी और वो अपने अधिकारों के लिये ही नही बल्कि महिला सम्मपत्ति जैसे मुद्दो के लिये भी उन्होंने कानूनी लड़ाई लड़ी और सारे भारत की नारियां को इस मामले मे जागरूक किया। 19वीं सदी की शुरूआत में महिलाओं के मुद्दों के राजनीति को गरमाकर रखा था जिसका नतीजा यह हुआ कि सभी की नजरें महिलाओ से सम्बंधित मुद्दो पर गई। और इसका परिणाम यह हुआ कि महिलाओं के पक्ष में सुधार शुरू हुए और नारी जागरण की भूमिका बनने लगी। और नारी जागरण एक बहुत बड़ा उद्देश्य बन गया और धीरे–धीरे भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के साथ भी जुड़ गया। [8]

19वीं शताब्दी के शुरूआत में जहां पुरूषों ने ही महिलाओं के पक्ष में आवाज उठानी शुरू की। लेकिन अब धीरे–धीरे इन प्रयासों में उनकी पत्नियां, बहनें, लड़कियां और हर तरह की महिला इस आन्दोलन में सम्मिलित होने लगी और नारी जागरण को एक सही अर्थ मिल गया। [9] उस समय नारी जागरण के लिये एक शब्द इस्तेमाल किया गया था। इस शब्द ने नारी आन्दोलन और उसके विजन के लॉजिकली और जमीनी स्तर पर भी एक बड़े रूप मे खड़ा कर दिया। अब महिलाओ को नज़र अन्दाज करना न तो समाज के बस की बात थी और न ही अंग्रेज सरकार के बस की बात थी। [10]

औपनिवेशिक तौर ने आधुनिकता को जन्म दिया था। आधुनिकता अपने साथ समानता और व्यक्तिगत अधिकार को भी लेकर आयी थी। साथ ही साथ आधुनिकता के प्रभाव से राष्ट्रवाद का जन्म हो रहा था और इस राष्ट्रवाद के साथ–साथ जाति और लिंग भेदी आन्दोलन भी अपनी जमीन तैयार कर रहे थे। भारत में नारी जागरण का पहला दौर पुरूषों द्वारा शुरू किया गया। निश्चित रूप से हमें यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी जैसा कि हम ऊपर लिख आये है। इस आन्दोलन ने बहुत कुछ सकारात्मक परिणाम भी प्राप्त किये थे, जैसे–सती प्रथा, उन्मूलन, विधवा पुर्नविवाह, बाल–विवाह पर अंकुश लगाना, के साथ–साथ इन्होंने महिलाओं की अशिक्षा और निरक्षता को कम करने की ओर ध्यान दिया और इसके लिये यदि जरूरत पड़ी तो उन्होनें संघर्ष करने में कोई हिचक नहीं रखी। हालांकि महिलाओं के स्तर में सुधार लाने का प्रभाव थोड़ा सा धीमा पड़ गया क्योकि भारत में उसमें राजनीतिक आन्दोलन भारत को स्वतंत्र बनाने के लिये एक बड़ा रूप लेने लगा था। महिलाओं के इस दौर को हम पहला दौर कह सकते है और इसको 1850 से 1915 के कालखण्ड में से रखा जा सकता है। [11]

भारत में स्त्रियों की पतनावस्था के निम्नलिखित कारण हैं –

1. व्यापक निरक्षरता

भारतीय स्त्रियों की हीन दशा का प्रमुख कारण उनमें फैली व्यापक निरक्षरता है। शिक्षा के अभाव के कारण भारतीय स्त्रियों का दृष्टिकोण अत्यंत संकीर्ण हो गया है। वे समझने लगी कि स्त्रियाँ इस संसार ने केवल पुरूषों की सेवा करने के लिए पैदा हुई है और उनकी समस्त सुख–सुविधायें पुरूषों की दया पर ही निर्भर है। इन सब कारणों से वे किसी भी सामाजिक आधार को व्यावहारिक रूप नहीं देती।

2. संयुक्त परिवार व्यवस्था

संयुक्त परिवार में स्त्रियाँ किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता का उपभोग नहीं कर पाती थी। प्रायः परिवारों में यह धारणा प्रचलित रही कि पति चाहे, क्रोधी, निकम्मा या स्वार्थी हो तब भी वह देवता तुल्य है, परमेश्वर है। दूसरे संयुक्त परिवार में स्त्रियों को किसी भी प्रकार के अधिकारों के उपभोग के अवसर नहीं मिलते। वे केवल दासी मात्र बनकर रह जाती हैं।

3. पुरूषों पर आर्थिक निर्भरता

भारतीय स्त्रियाँ प्रारम्भ से ही आर्थिक रूप से पुरूषों पर निर्भर रहती आयी हैं। इसके मुख्यता दो कारण हैं प्रथम तो उन्हें शिक्षा से वंचित रखा जाता हैं दूसरे उनका सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता। अतः प्रत्येक दशा में उन्हे पति, पिता या पुत्र पर निर्भर होना पड़ता है।

4. बाल–विवाह

बाल विवाह के कारण स्त्रियों की दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती हैं। अल्पायु में ही कन्या का विवाह कर दिया जाता है। अतः वहाँ से शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाती। अल्पायु में ही परिवार का भार उठाने से उनका शारीरिक और मानसिक विकास भी अवरूद्ध हो जाता है। गॉवों में आज भी बाल–विवाह का प्रचलन है।

5. पर्दा प्रथा

यह प्रथा आज भी भारत के सुदूर ग्रामीण अंचलों में विद्यमान है,

जिसके कारण महिला अपना समस्त विकास बाधित कर बैठी हैं। यद्यपि इसे कुछ परिवार में तो स्वेच्छा से त्यागा जा चुका है।

6. दहेज प्रथा

भारतीय नारी को पतनावस्था में पहुंचाने में दहेज प्रथा का सबसे अधिक योगदान रहा है। आज इस प्रथा ने अपना विकराल रूप धारण कर लिया है। दहेज से हमारा तात्पर्य उस सम्पत्ति से होता हैं जो कि कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष को दी जाती हैं।

- स्त्रियों के जीवन को नरक बनाने में दहेज प्रथा विशेश रूप से उत्तरदायी रहती है।
- इस प्रथा के कारण परिवारों में संघर्श होते रहते हैं और लड़कियों को दहेज के कारण अपमानजनक बातें सुनने को मिलती है तथा कहीं–कहीं उनके साथ अत्यंत क्रूरतम व्यवहार होता है।
- निर्धन माता–पिता दहेज न जुटा पाने कारण अपनी कन्या का विवाह नहीं कर पाते या अधिक आयु के व्यक्ति के साथ अपनी कन्या का विवाह कर उसके जीवन को नरक बना देते हैं।
- कभी–कभी दहेज पूरा न होने पर ससुराल से परेशान होकर (लड़कियाँ) नारियाँ आत्महत्या तक कर लेने को मजबूर हो जाती हैं।
- दहेज की पूर्ति न होने पर विवाह संबंध तक टूट जाते हैं तथा बरातें वापिस लौट जाती है।
- यद्यपि सरकार द्वारा दहेज प्रथा के विरोध में कई कानूनों का निर्माण किया जा चुका है परन्तु व्यवहार में इस प्रथा का अन्त नहीं हो पाया है।

7. शिक्षा की कमी

भारतीय महिलाओं का शैक्षिक प्रतिशत आजाद भारत के 66 वर्ष बाद भी ऊपर नहीं उठ पाया हैं।

8. स्वयं की रूचि में कमी

भारत की महिला स्वंय भी आगे नहीं बढ़ना चाहती हैं। यदि वह खुद को सशक्त नहीं बनाना चाहती।

9. परिवारिक वातावरण का अभाव

आज भी महिलाओं के विकास के लिए किसी परिवार या कुटुम्ब का खुला वातावरण नहीं हैं अतः पारिवारिक पृष्ठभूमि की नितांत आवश्यकता है।

10. कानून में एकरूपता का अभाव

हिन्दू–मुस्लिम महिला के लिए भिन्न कानून का प्रभाव है। यद्यपि हमारा संविधान स्त्री–पुरूष में कोई भेदभाव नहीं करता है। फिर भी यहाँ हिन्दू मुस्लिम कानूनों ने पृथक–पृथक व्यवस्था द्वारा शाहबानों गुड़िया, इमराना जैसे प्रकरण को हवा दी जाती रहेगी।

निष्कर्ष

19वीं एवं 20वीं सदी के प्रारम्भ में भारत में हुए धर्म सुधारकों ने भारतीय समाज के उत्थान के लिये भारतीय नारी के उत्थान को आवश्यक बता दिया था। निश्चित रूप से इससे भारतीय नारी समाज में कही न कही जागरण की भावना आयी वरन् भारतीय नारी समाज अपने अधिकारों के प्रति सजग भी होने लगा था। आदिकाल से वर्तमान तक देश काल एवं परिस्थिति के अनुसार समाज में समय–समय पर महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन तथा उनके उत्थान के लिए माँग भी उठती रही है। आर्यो के भारत में आने के प्रारम्भिक दिनों, पूर्व वैदिक काल में स्त्री तथा पुरूषों को समकक्ष माना जाता रहा है और यह स्थिति लगभग उत्तर वैदिक काल तक चलती रही। इस दौरान स्त्रियाँ सामाजिक, राजनीतिक व धार्मिक कार्यो में पुरूषों के साथ बराबरी की भागीदारी करती रही है। हिन्दू शास्त्रों में भी उन्हें शक्ति का प्रतीक दुर्गा, धन का प्रतीक लक्ष्मी और विद्या का प्रतीक सरस्वती, और अन्न की प्रतीक अन्नपूर्णा माना जाता रहा है। स्मृति काल में ब्राह्मण धर्म में कट्टरता के कारण पुरूषों ने अधिकारों की प्राप्ति की लालसा में स्त्रियों के अधिकारों का दायरा सीमित कर दिया और स्त्रियों को मात्र पुरूषों का आदेश मानने वाली अनुचरणी बना दिया गया। मध्यकाल तथा मुस्लिम काल में भी स्त्रियों की स्थिति और बिगड़ गई जिसमें सुधार के प्रयास आंग्ल शासन काल में किये गये। किन्तु ये सुधार तभी किये गये जबकि सामाजिक तथा धार्मिक सुधारकों ने इसकी माँग की। वास्तविक रूप में तो स्त्री उद्धार की माँग उन्नीसवीं शताब्दी में ही की गयी।

सन्दर्भ

1. राधाकुमार : स्त्री संघर्ष का इतिहास
2. डॉ0 के0एम0 मालती – स्त्री विमर्श भारतीय प्रतिप्रेक्ष्य में
3. सुमित सेन – उद्धत, आलेख स्त्री स्मिता : उभरते सवाल, शोध 2003, पृ0 87, संपादन डॉ0 श्याम सुन्दर
4. राधाकुमार – स्त्री संघर्ष का इतिहास
5. डॉ0 जी0वी0 मधुकर – भारतीय नारी और उसका त्याग, पृ0 421
6. विमला मेहता – आज की महिलाए, पराग प्रकाशन दिल्ली, 1975, पृ0 128
7. डॉ0 के0एम0 मालती – स्त्री विमर्श भारतीय प्रतिप्रेक्ष्य में
8. सोनिमा गुप्ता – सामाजिक क्रांति के दस्तावेज, पृ0 187
9. राधाकुमार – स्त्री संघर्ष का इतिहास
10. सोनिमा गुप्ता – सामाजिक क्रांति के दस्तावेज, पृ0 187
11. राधाकुमार – स्त्री संघर्ष का इतिहास